अंधेर नगरी' - एक प्रहसन की समीक्षा

Andher Nagari - Ek Prahasan Ki Sameeksha

***Dr.Manjushree Menon, Associate Professor of Hindi, M.E.S.College of Arts, Commerce and Science, Bangalore.**

भूमिका:-

अंधेरी नगरी एक प्रहसन है पूरा नाटक नहीं। लेकिन इसे भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने छह अंकों में विभाजित किया है। ये सभी अंक अलग-अलग स्थानों पर घटित होते हैं। छोटा नाटक होते हुए भी इसमें पात्रों की संख्या बहुत ज्यादा है। गद्य में संवादों के साथ-साथ पद्य के अंश भी काफी ज्यादा हैं। पहले अंक की शुरूआत ही गीत से होती है। पूरे प्रहसन को रंगमंच पर भी खेला जा सकता है, खुले मंच पर भी और नुक्कड़ नाटक शैली में भी। वस्तुत: इन तीनों रूपों में यह नाटक खेला भी गया है।

प्रहसन के रूप

नाटक नामक पुस्तक में भारतेन्दु ने प्रहसन की परिभाषा करते हुए लिखा था कि 'हास्य रसं का मुख्य खेल। नायक राजा वा धनी वा ब्राह्मण वा धूर्त कोई हो। इसमें अनेक पात्रों का समावेश होता है। यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए किन्तु अब अनेक दृश्य दिये बिना नहीं लिखे जाते।' इस परिभाषा को प्रस्तुत करने के बाद उन्होंने हास्यार्णव, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति और अंधेरी नगरी की गणना प्रहसन के रूप में की है। तात्पर्य यह है कि भारतेंदु अंधेर नगरी को प्रहसन मानते हैं, लेकिन उसकी शास्त्रीय संरचना में पर्याप्त ढील भी दे देते हैं। उन्हीं के अनुसार, प्रहसन हास्य प्रधान होता है। इस दृष्टि से अंधेर नगरी भी हास्य प्रधान है। लेकिन सिर्फ हास्य प्रधान नहीं वरन् इसमें व्यंग्य का जबर्दस्त पुट है। इसलिए चाहें तो हम यह भी कह सकते हैं कि अंधेरी नगरी हास्य-व्यंग्य प्रधान है, न कि सिर्फ हास्य प्रधान।

भारतेन्दु प्रहसन की दूसरी विशेषता यह बताते हैं कि इसका नायक राजा, धनी, ब्राह्मण या धूर्त कोई भी हो सकता है। इस दृष्टि से विचार करें तो अंधेर नगरी के बारे में साफतौर पर कुछ भी कहना कठिन है। इसमें राजा भी है, ब्राह्मण भी और धूर्त पात्र भी हैं, लेकिन अंधेरी का नगरी नायक किसे माना जाए यह तय करना कठिन है। प्रहसन में महत्व के हिसाब से राजा, मंत्री, गोबरधनदास और महंत का उल्लेख किया जा सकता है, लेकिन इनमें से क्या किसी को भी नायक स्वीकार किया जा सकता है। सबसे पहले राजा पर विचार करें। नाटक का शीर्षक अंधेर नगरी है, लेकिन इसका उपशीर्षक 'अंधेरी नगरी: चौपट राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा' है। यानी यह नाटक अंधेर नगरी के चौपट राजा से संबंधित है। यहाँ यह जानना महत्वपूर्ण है कि 'अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा' नामक प्रसिद्ध लोकोक्ति को भारतेन्दु ने प्रहसन का रूप दिया। यानी एक ऐसी नगरी का रूपक उन्होंने प्रहसन में निर्मित किया जिसके राज्य में किसी तरह की व्यवस्था न हो और जहां का राजा चौपट हो। चौपट का तात्पर्य है बुद्धिविहीन, जो कुछ भी सही ढंग से करने की क्षमता नहीं रखता। अंधेर नगरी में भी एक राजा है जो इस लोकोक्ति के अनुरूप ही बुद्धिविहीन है। लेकिन क्या ऐसा बुद्धिविहीन राजा नाटक का नायक माना जा सकता है? राजा का नाटक

में पहली बार उल्लेख दूसरे अंक में आता है। बाजार में घूमते हुए गोबरधनदास को हर चीज टके सेर के भाव से बिकती दिखाई देती है तो वह हलवाई से मिठाई खरीदते हुए पूछता है कि 'इस नगरी का नाम क्या है? और यहाँ के 'राजा का क्या नाम है?' जवाब में हलवाई बताता है नगरी का नाम 'अंधेर नगरी' और राजा का नाम चौपट राजा है।

हलवाई के बताए इस परिचय से ही साफ जाहिर हो जाता है कि नगर और राजा दोनों को नाटककार ने प्रतीक के रूप में ही लिया है। राजा का एक पात्र के रूप में पदार्पण चौथे अंक में होता है। राज सभा में राजा मौजूद है और साथ में राजा के मंत्री और दूसरे नौकर भी हैं। एक फर्यादी को पकड़कर लाया जाता है, वह अपनी फरियाद सुनाता है। इस अंक में मुकदमे की कार्रवाई चलती है और राजा अंत में कोतवाल को फाँसी देने का फैसला देता है। इसके बाद फिर राजा का आगमन छठे अंक में होता है जिसमें सारी कार्रवाई श्मशान में घटित होती है। यानी कि कुल छह अंको में से दो अंकों में राजा आता है और उनमें भी सिर्फ एक अंक में राजा पूरे समय सक्रिय रूप से मंच पर गतिविधि करता हुआ नज़र आता है।

आखरी अंक में सिर्फ राजा के द्वारा केवल तीन संवाद बोलवाए गए हैं। इस प्रकार राजा पूरे प्रहसन में छह अंक में से केवल एक अंक में ही उपस्थित होकर क्या प्रहसन का नायक कहा जा सकता है? यह जरूर है कि नाटक के मूल कथ्य के साथ राजा का गहरा संबंध है क्योंकि अंधेर नगरी का वह राजा है और उसकी जनविरोधी और अविवेकपूर्ण प्रवृत्ति से ही कथ्य में वह अर्थ व्यक्त हुआ है जो लेखक का ध्येय है। राजा का चरित्र प्रहसन में जिस तरह चित्रित किया गया है, वह नायकों के किसी वर्गीकरण के अनुसार नहीं है। इसके विपरीत उसका चरित्र विदुषक की तरह है जबकि संस्कृत नाटकों में विदुषक नायक का सहायक पात्र होता था और जिसका मकसद नायक का मनबहलाव करना होता था।

'प्रहसन' की परिभाषा में तीसरी बात भारतेन्द्र ने यह लिखी थी कि इसमें 'अनेक पात्रों का समावेश हो सकता है। इस दृष्टि से विचार करने पर हमें इसमें अनेक पात्रों का समावेश अत्यंत सोद्देश्यपूर्ण प्रतीत होता है। व्यक्ति के तौर पर भले ही उनमें चारित्रिक विशिष्टता का अभाव झलकता हो, लेकिन प्रहसन की पूरी संरचना में सभी पात्र किसी न किसी रूप में मदद करते हैं। वस्तुत: यह चरित्र प्रधान नाटक नहीं है। लेकिन इनमें पात्रों की सृष्टि काफी सोच-विचार कर की गई है। ऊपर हमने जिन चार पात्रों का उल्लेख किया है, उनके अलावा भी जो पात्र प्रहसन में आए हैं, वे नाटक की कथावस्तु के अर्थ । को या तो विस्तार देते हैं या नया आयाम देते हैं। उदाहरण के लिए दूसरे अंक में बाज़ार के दृश्य में चूरन वाले, नारंगी वाले, हलवाई, कुंजड़िन, मुगल, पाचक वाला, मछली वाली, ब्राह्मण, बनिया आदि विभिन्न पात्र मंच पर आकर सिर्फ अपने संवाद बोलते हैं और प्राय: सभी के संवाद पद्य में हैं लकिन इन संवादों में भारतेन्दु ने तीखे व्यंग्य का जो पुट दिया है, वह न तो इन पात्रों को सिर्फ बाजार में बैठे विक्रेता रहने देता है और न ही वे सिर्फ चीजें बेचते नजर आते हैं। मसलन, चूरन बेचने वाला घासीराम चूरन बेचने की गुहार लगाते-लगाते अंत में कहता है: चना हकिम सब जो खाते / सब पर दूना टिकस लगाते। या इसी तरह कुंजड़िन कहती है, 'ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर।' और दूसरे पात्र के । संवादों में भी इसी तरह दो-चार पंक्तियों के माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। व्यंग्य की इसी शक्ति का उपयोग पात्रों को प्रभावशाली रूप में पेश करने के लिए निर्देशक कर सकता है।

भारतेन्दु ने प्रहसन को परिभाषित करते हुए एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह कही है कि 'यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए किन्तु अब अनेक दृश्य दिए बिना नहीं लिखे जाते।' अंधेर नगरी भी एक अंक का प्रहसन नहीं है। इसमें कुल छह अंक है लेकिन प्रत्येक अंक में दृश्यों का विभाजन नहीं है। उपर्युक्त कथन में भी अंक और दृश्य के बीच के भेद को महत्व नहीं दिया गया है। प्राय: अंकों का विभाजन कथ्य में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार होता है। इस दृष्टि से विचार करें तो इस प्रहसन के सभी छह अंकों में कथा अलग-अलग स्थानों पर घटित होती है। काल की दृष्टि से इनमें बहुत अधिक अंतराल नहीं है।

'अंधेर नगरी' के नाट्यशिल्प की विशेषताएँ

अंधेर नगरी का नाट्यशिल्प अत्यंत लचीला, सरल, आकर्षक और गत्यात्मक है। भारतेंदु ने इसमें किसी एक प्रकार के परम्परागत अथवा आधुनिक शिल्प का प्रयोग नहीं किया है बल्कि नाटक को रूढ़ियों से, एक प्रचलित ढाँचे से मुक्त किया है। यह भारतेंदु की निरंतर नवीन ग्रहण-वृत्ति और रचना-वृत्ति को स्पष्ट करता है। अंधेर नगरी की पूरा कथावस्तु पाँच अंकों में विभाजित है और इन अंकों में कोई दृश्य विधान नहीं है। इस नाटक में भारतेंदु की विशेषता उन अंकों या दृश्यों की कल्पना, उनके संयोजन और उनकी नाटकीयता में है। आप जानते हैं कि प्रायः श्रेष्ठ नाटककार ऐसे नाटकीय व्यंग्य को लेता है जिस पर पूरे नाटक का ढाँचा खड़ा होता है। अंधेर नगरी में भी गहरी व्यंग्यमूलक नाटकीय स्थिति इस प्रश्न से जुड़ती है कि दीवार किसके कारण गिरी? क्या वह अपराध सिद्ध हुआ? क्या न्याय मिला? क्या अपराधी बस खोजा जाता रहा? नाटकीय स्थिति की विशिष्टता और व्यंग्यात्मकता नाटक को आद्यंत चुस्त और लयात्मक सौंदर्य से युक्त बनाए रखती है। इसका लीचला शिल्प इसे यथार्थपरक भी बनाता है और शैलीबद्ध भी। हमेशा नए आस्वाद की संभावनाओं का यह सदाबहार नाटक कहा जा सकता है।

'अंधेर नगरी' का रूप-विधान

अंधेर नगरी का शिल्प मौलिक और लचीला है। परिणामस्वरूप उसका रूप-विधान सरल, सहज, लचीला और विलक्षण है क्योंकि भारतेंदु ने उसकी रचना किसी एक प्रकार के रूप-विधान में बंधकर नहीं की है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे प्रहसन कहा गया है। स्वयं भारतेंदु ने इसे प्रहसन की संज्ञा दी है और प्रहसन का शास्त्रीय लक्षण भी दिया है पर अपने 'नाटक' नामक निबंध में प्रहसन के संदर्भ में वह यह भी लिखते हैं कि 'यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए किंतु अब अनेक दृश्य दिए बिना नहीं लिखे जाते।' यही भारतेंदु की स्वतंत्र, सजग और मौलिक दृष्टि है जिसके कारण वह अंधेर नगरी में परम्परागत नियमों को स्वीकार तो करते हैं किंतु उसके रूप-विधान में युगानुरूप नवीन प्रयोग करने से भी नहीं हिचकते। इस नाटक के छह अंक अपने वस्तु-चयन, संयोजन और चरम उत्कर्ष में उल्लेखनीय हैं। इसका नाटकीय दृश्य-विधान सरल युक्तियों के साथ चरमोत्कर्ष तक अनायास पहुँचता है।

अंधेर नगरी को दृष्टांत शैली का नाटक भी कहा जा सकता है। जिज्ञासा-समाधान शैली में भारतेंदु एक दृष्टांत का सहारा लेते हुए एक सच्चे अनुभव को प्रमाणित करना चाहते हैं। आपको यह भी बताया गया कि भारतेंदु की मूल चेतना लोकधर्मिता की है अतः अंधेर नगरी के रूप-विधान में लोक नाटक जैसा खुलापन, स्वाभाविकता और ताज़गी है। अंधेर नगरी की रचना सामान्य जनसमुदाय के लिए लोक परंपरा से कथानक लेकर की गई है जिसमें जनमानस की संवेदना भी निहित है और जन-संस्कार भी। उत्तर प्रदेश के स्वांग और नौटंकी जैसे प्रसिद्ध लोक-नाटकों की

पद्धति अंधेर नगरी में है पर उनका यथावत् अनुकरण नहीं। दृश्य-परिवर्तन का लचीलापन, पात्रों का प्रवेश-प्रस्थान, संवाद-रचना, काव्य और संगीत, तीव्रता, भंगिमाएँ, नाटक का अंत सब लोक-नाटकों जैसा है। उसमें दृश्यों का जो तारतम्य है, जो अभिनय शैली है, दर्शकों से जो सीधे साक्षात्कार है और प्रवाह है वह लोक चेतना और लोक संस्कृति से जुड़ता है। इसीलिए यह नाटक देश की किसी भी लोक-नाट्य शैली में प्रस्तुत किए जाने का लचीलापन रखता है।

अंधेर नगरी में पारसी नाट्य-शैली में निहित कार्य-व्यापार की तीव्रता, नाटकीयता, उत्तेजना और मनोरंजकता भी है। पारसी नाटकों का विरोध करते हुए भी भारतेंदु जनमानस को प्रभावित करने वाले उसके तत्त्वों के प्रति सजग थे। उनका मुख्य लक्ष्य था – जनजागरण और हिंदी नाट्य-कला का सृजनात्मक विकास। बाज़ार दृश्य का उत्तेजनात्मक आवेग अगर एक ओर नौटंकी की याद दिलाता है तो दूसरी ओर पारसी नाटक की।

निष्कर्ष:

भाषा कोई बना-बनाया ढाँचा, निर्धारित और स्थूल वस्तु नहीं है, उसे तो नाटककार नया अर्थ और नया संस्कार देता है। अंधेर नगरी की भाषा सामान्य बोलचाल की भाषा है, सीधी और सरल है पर नितांत सामान्य दीखते हुए भी विलक्षण है। यह भाषा जहाँ यथार्थ का भ्रम पैदा करती है, वहीं नाट्य तत्व इनमें शब्द को क्रिया दे रहा है। दृश्य-तत्व, ऐन्द्रिक अनुभव, बिम्बात्मकता, व्यंजना और संकेत देकर प्रचलित भाषा की पुनर्रचना कर रहा है। अंधेर नगरी में शब्द का अलग से महत्व नहीं है – उस समग्र प्रभाव का है जो उससे ध्वनित होता है – यह ही अंधेर नगरी की विशेषता है। उसका समग्र प्रभाव और व्यंजनाएँ विश्व स्तर पर होने वाले परिवर्तनों और व्यवस्था-चक्र के साथ और अधिक सटीक होते जाने के कारण शाश्वत सौंदर्य से युक्त है।

संदर्भ ग्रंथ:-

- अंधेर नगरी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, सं गिरीश rastogi राजकमल पेपरबैक्स, नयी दिल्ली, २००७
- अंधेर नगरी चौपट राजा: मूल्याङ्कन, मूल पथ एवं कठिन शब्दार्थ सहित, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, साहित्यागर, २००६
- भारत दुर्दशा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, सं रामकली सराफ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, २०१२